New Man International Journal of Multidisciplinary Studies
(UGC Approved Journal No. 45886)
ISSN: 2348-1390
Impact Factor: 4.321 (IIJIF)

18.

गांधी तिलक की विरासत : जय प्रकाष

–प्रो. नृपेन्द्र प्रसाद मोदी
विभागाध्यक्ष
गांधी एवं शांति अध्ययन
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिन्दी विश्वविद्यालय,
वर्धा–442001 (महाराष्ट्र)

महात्मा गांधी एक विचारधारा है, एक सम्पूर्ण दर्शन, एक समग्र राजनीतिक विरासत। वस्तुतः विनोबा, जय प्रकाश, मार्टिन लूथर किंग जूनियर, नेल्सन मंडेला, आंग सान सू की, खान अब्दुल गफ्फार खान, ए. टी. आर्यरत्ने, जैसे न जाने कितने लोग गांधीय मार्ग के ध्वजवाही संघर्षी बने और वैश्विक स्तर पर गांधी विरासत का एहसास कराए। वैश्विक स्तर पर तो साम्यवाद की समाप्ति को महसूस किया जाने लगा है तथा पूँजीवाद अपनी एक खास ऊचाई पर जाकर ठहर–सा गया है, ऐसा प्रतीत होने लगा है अतएव आशा एवं उम्मीद गांधी मार्ग पर टिकता जा रहा है। सामाजिक एवं आर्थिक प्रभाव के परिपेक्ष्य में राजनीति प्रभाव, अधिक प्रभावी होता रहा है, जिसे लोकमान्य तिलक ने स्वीकारा भी था। गांधी के लिए धर्म, राजनीति अर्थतंत्र और समाज अलग–अलग कटघरे नहीं हैं, फिर भी हर क्षेत्र के बारे में उन्होंने समय–समय पर प्रकाश डाला है। उनके राजनीति दर्शन, को समझने के लिए 'स्वराज' की उनकी धारणा को समझना होगा, जिसे प्राप्त करने में उनका बड़ा येागदान रहा। वस्तुतः मोहन से महात्मा का आरोहन साधारण से असाधारण बनने की साधना है। भारतीय राजनीति में बालगंगाधर तिलक को उनके स्वराज्य प्रेम, समर्पण एवं संघर्ष के लिए राष्ट्र ने 'लोकमान्य' से विभूषित किया तो दूसरी ओर जय प्रकाश नारायण को जो अपनी जीवन यात्रा साम्यवाद से सर्वोदय और सर्वोदय से सम्पूर्ण क्रांति तक हिंसा से अहिंसा तक, बन्दूक–बम से आत्मशक्ति तक का सफर करने वाले जय प्रकाश को 'लोक नायक' कहा। उनका जीवन 'जय हिन्द' से आगे बढ़कर 'जय जगत' की ओर अग्रसर एक महामहानव का था। महात्मा गांधी का जीवनपर्यन्त लगाव एवं आस्था सत्य एवं अहिंसा से रहा। मानवता के कल्याणार्थ उनके समर्पण को उन्हें मोहन से 'महात्मा' तथा संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा उनके जन्म दिन को 'विश्व अहिंसा दिवस' मनाने का निर्णय लेकर गौरवान्वित हुई है।

दुर्जेय शक्ति और अदम्य साहस के धनी लोकमान्य तिलक भारत के पूर्ण स्वराज के प्रबल पक्षधर तथा उग्र राष्ट्रवादी विचारधारा के प्रवर्तक (बाल, लाल, पाल) की प्रथम कड़ी बाल गंगाधर थे। गांधी के दक्षिण अफ्रीका से भारत 1915 में आने के पूर्व तिलक ने उदारवादियों के वैधानिक आन्दोलन को एक वास्तविक राष्ट्रीय आन्दोलन और जन–आन्दोलन के रुप में परिवर्तित कर दिया। वे पाश्चात्य सरणि के अन्धानुकरण के विरोधी थे। उन्होंने महसूस किया कि अंग्रेजी की शिक्षा–प्रणाली का उद्देश्य उनके राज्य को भारत में और मजबूत बनाना है। पाश्चात्य शिक्षा लोगों को अपने ही धर्म का विरोधी और अपने ही सामाजिक ढाँचे का शत्रु बनाती है, इसके अतिरिक्त लोगों के मन को दूषित भी करती है। यह 'केसरी' में उपलब्ध उनकी एक टिप्पणी से सिद्द होता है। 'केसरी' मराठा भाषा की एक साप्ताहिक पत्रिका थी, जिसके वह स्वयं संपादक थे। 1880 में उन्होंने पत्रकारिता की वृत्ति अपनाई। दो साप्ताहिकों केसरी तथा मराठी की वह प्रेरक शक्ति थे। 1889 में वह इंडियन नेशनल कांग्रेस के सदस्य बने। सूरत विभाजन के पश्चात 1907 में वह उससे पृथक हो गए। 1908 में देशद्रोह के आरोप में उन्हें जेल भेज दिया गया। 1916 में उन्होंने होमरुल लीग आन्दोलन आरंभ किया। उन्होंने चुनाव लड़ने के लिए कांग्रेस डेमोक्रेटिक पार्टी बनाई। वास्तव में उन्होंने भारतीय राजनीतिक विचार की धारा बदल दी, और कांग्रेस को देश की स्वतंत्रता आन्दोलन में आमूल परिवर्तनकारी कार्यक्रम अपनाने के लिए मना लिया। उनका व्यक्तित्व पत्रकारिता विद्वता एवं शिक्षण की परिपक्व वृत्तियों का प्रभावपूर्ण संम्मिश्रण था। वह कांग्रेस के उग्रवादी दल के महान नेता थे। उन्हें

'भारतीय विप्लव के जनक' की संज्ञा से अभिहित करना उनके आत्मोत्सर्ग परक कृतित्व एवं गरिमामयी उपलब्धियों के प्रति साभार यथार्थिक मान्यता प्रदान करना ही है।[1]

तिलक भारत की संस्कृति एवं सभ्यता के प्रति सजग एवं सचेत थे। वे पाश्चात्य सरणि के अन्धानुकरण के विरोधी थे। उन्होंने' केसरी' में 1905 में लिखा है कि 'हमारे अनेक शिक्षित युवक बिना सभ्यक समालोचन के भौतिकवादी पाश्चात्य विचारधारा को स्वीकार करने लगे हैं। इस प्रकार पश्चिम के कोरे भौतिकवाद की कार्बन प्रतिलिपि अपने मनों पर अंकित करने वाले व्यक्तियों की विद्यमानता से हमारे देश में शोचनीय स्थिति उत्पन्न हुई है।[2] तिलक ब्रिटिश जीवन दर्शन को स्वीकार करने को कभी तैयार न थे तथापि उनके मतानुसार परिवर्तनों को भीतर से ही होना चाहिए, बाहर से नहीं। इनका आयात पश्चिम से नहीं होना चाहिए। भारतीय दर्शन ही भारत के पुननिर्माण में हमारा मार्ग दर्शन करें। उन्होंने 'मराठा' के दिसम्बर 1919 के अंक में लिखा था कि 'एक सच्चा राष्ट्रवादी प्राचीनता की नींव पर ही निर्माण चाहता है। प्राचीनता के प्रति पूर्ण निराधर के आधार पर हुए सुधार उन्हें रचनात्मक कार्य के रुप में युक्त संगत नहीं लगते। अपनी संस्थाओं का अंग्रेजीकरण कर उन्हें अराष्ट्रीय बनाना हमें अभिप्रेत नहीं है।[3]

तिलक के लिए राष्ट्रीयता एवं स्वाभिमान सर्वोपरि था। उन्हे भारतीय राजनीति से अतिशय लगाव था लेकिन उसे व्यापक पैमाने पर आमजन तक पहुँचाने के लिए शिक्षा ही सबसे अधिक महत्वपूर्ण माध्यम था अतएव राष्ट्रीय शिक्षा के हित में उन्होंने एक नया आन्दोलन आरंभ किया। देश की परिस्थितियों से सर्वसाधारण को अवगत कराने के लिए स्कूलों का जाल बिछा दिया। 1884 में डेकन एजूकेशन सोसाइटी का गठन किया गया उसी सोसाइटी के द्वारा 1885 में फर्गुसन कॉलेज खोला गया। स्वयं तिलक ने इस कॉलेज में गणित तथा संस्कृत का अध्यापन 1890 तक किया। उन्होंने पाश्चात्य बुद्विवाद और संदेहवाद को स्वीकार नहीं किया और सदा भारतीय दर्शन का मार्गदर्शन ही खोजा। किन्तु उनका दृष्टिकोण संकीर्ण नहीं था। वह अंग्रेजी शिक्षा के महत्व को घटाकर बताने पर बल नहीं देते थे। उन्होंने हिगल, कांट, स्पेन्सर, मिल, बेन्थम, वाल्टेयर और रुसो आदि पश्चिमी लेखकों का कॉलेज के दिनों में अध्ययन किया था। वास्तव में उनका विरोध उन भारतीयों के प्रति था, जो एकांगी और अन्धविश्वास परक दृष्टिकोण रखते हुए भारत के बिम्ब को पश्चिमी रंग देना चाहते थे। वह बलपूर्वक कहते थे ''नवशिक्षित वर्गों को प्राचीन परंपराओं और दर्शनों का समुचित ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है और पण्डितों और दर्शनों का समुचित ज्ञान प्रदान करना आवश्यक है और पण्डितों और शास्त्रियों को सद्यः परिवर्तित और परिवर्तनशील परिस्थितियों से अवगत रखना भी उतना ही आवश्यक है।[4] वह यह निस्संकोच स्वीकार करते थे कि ग्रीक इतिहास और अन्तर्राष्ट्रीय खेलों के विचार से उन्हें गणपति त्योहार मनाने की प्रेरणा मिली है और इमर्सन और कार्लाइन के नायक पूजा के दृष्टिकोण ने उन्हों शिवाजी उत्सव मानने को प्रोत्साहित किया। वह इन ब्रिटिश विचारकों से सहमत थे कि महान बनने के लिए किसी भी राष्ट्र के लिए यह आवश्यक है कि वह अपने वीरों का उचित सम्मान करे। इस उत्सव में ही उन्होंन कहा था, ''यदि हमारे घर में चोर घुस आएँ और उन्हें बाहर खदेड़ने की हमारी पास पर्याप्त शक्ति नहीं हो तो क्या हमें उचित नहीं लगता कि हम उन्हें बन्द कर जीवित छोड़ दें।'' उन्होंने शिवाजी द्वार अफजल खाँ को मारे जाने को उचित ठहराया और लोगों को इस महान नेता का अनुसरण करने की प्रेरणा दी जिससे विदेशियों के चंगुल से मातृभूमि को मुक्त कराया जा सके।[5]

तिलक अनुभव करते थे कि धार्मिक उत्सव हमारे धार्मिक संस्कारों को ही जीवित नहीं रखते, प्रत्युत नैतिक, सामाजिक तथा राजनीतिक शिक्षण का भी प्रेरणा स्त्रोत है। 'गीता रहस्य' तिलक की महत्तम एवं पावनतम रचना है, जो गीता की शिक्षाओं के सम्बन्ध में दार्शनिक, अन्तर्दृष्टि प्रदान करती है। अपने समकालीन सुधार वादियों से पृथक कार्य–सरणि अपनाने पर भी तिलक को एक महान समाज –सुधारक के रुप में स्मरण किया जाता है। वे ब्रहम समाज और प्रार्थना समाज जैसे अनेक सुधार आन्दोलन पाश्चात्य आदर्शों और मूल्यों से प्रभावित थे। सामाजिक तथा राजनीतिक विषयों को परस्पर मिला देने के विरोधी थे। उनका यह मानना था कि राजनीतिक प्रगति सामाजिक परिवर्तन धीमी गति से होता है। वह उन समाज सुधारकों के बहकावे में नहीं आते, जिनकी मान्यता यह थी कि समाज सुधार राजनीतिक प्रगति की एक आवश्यक पूर्वदशा है। किन्तु यह दृढ़ मान्यता थी कि सांस्कृतिक स्वायतता की रक्षा हम राजनीतिक

अधिकारों के अभाव में नहीं कर सकते। उन्होंने यह भी कहा कि राजनीतिक सुधार के बिना सामाजिक सुधार संभव नहीं है और नहीं राष्ट्रीय सरकार के बिना राष्ट्रीय शिक्षा संभव है। तिलक सामाजिक, धार्मिक, नैतिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक, आदि क्षेत्रों में सुधार के पक्षघर थे परन्तु राजनीतिक प्रगति उनके लिए सर्वोपरि था।

लोकमान्य तिलक की आस्था आर्य धर्म में थी। वे सामाजिक बुराइयों का निवारण करने और सामाजिक दशाओं में सुधार लाने के लिए अत्यन्त आतुर थे, किन्तु वह भारत का नव निर्माण करते समय उसे पश्चिम का रुप नहीं देना चाहते थे न ही विदेशी राज्य द्वारा किसी प्रकार के सुधार लादे जाने के पक्ष में थे। वह इस पक्ष में थे कि सुधारक स्वयं भारतीयों में से ही हों, न कि एक उदार शासक अपने पराधीन व्यक्तियों को वह कृपा पूर्वक प्रदान करें। उन्होंने छुआछुत का विरोध किया मार्च 1918 में मुम्बई में दलितों के कन्फ्रेंस में उन्होंने भाषण दिया और जोरदार शब्दों में कहा कि सब भारतीय एक ही मातृभूमि की सन्तान हैं। उन्होंने घोषणा की ''अगर ईश्वर भी छुआछुत में विश्वास रखता है तो मैं उसे 'ईश्वर मानने को तैयार नहीं हूँ।'' इसलिए उन्होंने दलितों को गणपति उत्सव में भाग लेने के लिए उत्साहित किया। उन्होंने विधवा पुनर्विवाह का प्रचार किया। तिलक द्वारा आयोजित गणपति और शिवाजी उत्सवों से लोगों में एकता लाने के उद्देश्य की सिद्दि होती थी। इसमें उन्हें सफलता भी मिली।

तिलक का स्वराज्य के प्रति अतिशय लगाव था अतः मातृभूमि के के लिए अपनी भक्ति तथा समर्पण के कारण उन्हें भारतीय 'राष्ट्रवाद का हरक्यूलीस' इस संज्ञा से विभूषित किया गया है। उनका राजनीतिक दर्शन 'स्वराज्य' शब्द पर ही केन्द्रित था। स्वराज्य एक पुरातन वैदिक शब्द है। तिलक ने इसे हिन्दू शास्त्रों से प्राप्त किया था। उन्होंने 'स्वराज्य' को एक विशुध्द नैतिक और आध्यात्मिक अर्थ दिया था। राजनीतिक दृष्टि से इसका अर्थ होमरुल था, अर्थात अपने घर में अपना ही शासन। उन्होंने घोषणा की ''स्वराज्य मेरा जन्म सिद्द अधिकार है और मैं इसे प्राप्त करुँगा।''

तिलक का संवैधानिक उपायों में विश्वास उतना नहीं रह गया था अतः उन्होंने साग्रह कहा, विरोध से कोई लाभ नहीं। तिलक तथा उनके समान विचार वाले राष्ट्रवादियों ने स्वराज्य–प्राप्ति के लिए प्रभावपूर्ण कार्य करने के लिए राष्ट्र के सामने यह चार सूत्री कार्यक्रम रखा, बहिष्कार, स्वदेशी, राष्ट्रीय शिक्षा तथा शांतिपूर्ण प्रतिशोध। इन उपायों को स्वराज्य–प्राप्ति के लिए प्रयोग में लाने के प्रबल पोषक होने कारण तिलक को उग्रवादी की संज्ञा दी जाती है।

स्वदेशी–यह मात्र एक आर्थिक आन्दोलन ही नहीं था, वरण वह उनके हाथों में एक राजनीतिक हथियार था, जिसके द्वारा वह ब्रिटेन को आर्थिक दृष्टि से अपंग बनाकर उनके राजनीतिक आधार को भी हिला देना चाहते थे। तिलक ने घोषणा की, 'यदि हम श्वेत व्यक्ति के दास नहीं रहना चाहते, तो हमें स्वदेशी के अभियान को पूर्ण शक्ति चलाना चाहिए। हमारी मुक्ति का मात्र यही एक प्रभावशाली उपाय है।'[6] स्वदेशी का यह आन्दोलन शीघ्र ही राष्ट्रीय पुनरुद्दार के आन्दोलन में परिणत हो गया। इसे राष्ट्र के प्रति प्रेम के क्रियात्मक प्रयोग के रुप में माना जाने लगा। तिलक के शब्दों में 'ऋषियों की भूमि को धरती माता के रुप में मानना ही स्वदेशी आन्दोलन है।' इस प्रकार स्वदेशी 'वन्दे मातरम' प्रमाणित हो गया।

बहिष्कार–आरम्भ में बहिष्कार एक ऐसा उपाय था, जिसके द्वारा भारत तथा विदेश में बिटिश व्यापारिक हितों पर आर्थिक दबाव डाला जाता था, ब्रिटिश निर्मित वस्तुएँ खरीदने से लोगों का इन्कार करना। किन्तु शीघ्र ही आन्दोलन ने नया मोड़ लिया तिलक ने बलपूर्वक कहा कि स्वदेशी में विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के बिना क्रियात्मक दृष्टि से विश्वास अर्थहीन है। उन्होंने कहा, 'यदि आप स्वदेशी का वरण करते हैं, तो आपको विदेशी का बहिष्कार करना पड़ेगा। बिना इसके स्वदेशी की उन्नति नहीं हो सकती। बहिष्कार एक प्रबल शस्त्र है, युद्द का विकल्प है। नर्मदलीय राष्ट्रवादी इसे स्वीकृति प्रदान करने में संकोच कर रहे थे। स्वदेशी आन्दोलन तथा बहिष्कार द्वारा सर्व साधारण को राजनीतिक आन्दोलन के और निकट आने में सहायता मिली।[7]

राष्ट्रीय शिक्षा–भारतीय राजनीति को प्रभावित करने में राष्ट्रीय शिक्षा (National Education) को तिलक ने बहुत महत्वपूर्ण माना था। पाश्चात्य शिक्षा द्वारा भारतीय नवयुवक नाम को ही भारतीय रह जाते हैं। यही कारण था कि तिलक तथा उसके समकालीन राष्ट्रवादियों ने राष्ट्रीय स्कूलों तथा कॉलेजों की आवश्यक पर बल दिया। राष्ट्रीय शिक्षा इस प्रकार बीसवीं सदी के भारत के राष्ट्रवादियों के कार्यक्रम का एक आंतरिक अंग बनी।

शांति पूर्ण प्रतिरोध तिलक के अनुसार स्वदेशी तथा बहिष्कार आन्दोलन शांतिपूर्ण प्रतिरोध की तकनीक स्वरुप थे। उन्होंने भारत के नर्मदल द्वारा अब तक प्रयुक्त संवैधानिक उपायों के स्थान पर शांतिपूर्ण प्रतिरोध को रखा। किन्तु उनके शांतिपूर्ण प्रतिरोध का अर्थ, जैसा कि सामान्यतः समझा जाता है, हिंसा का प्रयोग अनुमति नहीं देता। एक दूरदर्शी राजनीतिज्ञ के नाते वह एक पराधीन राष्ट्र की परिसीमाओं से अवगत थे। वे जानते थे, ''हमारे पास शस्त्र नहीं है और न ही उनकी कोई आवश्यकता है।[8] हिंसा को प्रश्रय देने के पक्ष में वे नहीं थे, यद्यपि गांधीजी ने एक बार बाद में तिलक के शांतिपूर्ण प्रतिरोध को कायरता का सिद्दान्त, दुर्बल का सत्याग्रह बताया। इस प्रकार चार सूत्री कार्यक्रम के द्वारा तिलक ने स्वराज्य प्राप्ति का यत्न किया। तिलक के बाद 1920 से देश का नेतृत्व गांधीजी के पास आया। तिलक के द्वारा लगभग तीन दशक तक देश में आन्दोलन का वातावरण तैयार किया जा चुका था, जिससे गांधीजी को संचालन में सुविधा हुई तथा उग्रवादी तथा नम्रवादी के भेदभाव को पाटने में गांधीजी सफल भी रहे।

उग्रवादी विचारधारा ने लाल–बाल तथा पाल की त्रिमण्डली का सृजन किया, जिन्होंने उदारवादियों की आलोचना करते हुए विदेशी, बहिष्कार तथा राष्ट्रीय शिक्षा को शामिल करके राष्ट्रवादी भाषा को बदल दिया। पंजाब, महाराष्ट्र तथा बंगाल में क्रमशः लाल बाल–पाल इतने लोकप्रिय थे कि इन क्षेत्रों में ऐसा लगता था कि उदारवादियों ने अपनी विश्वसनीयता खो दी थी। इन तीनों में बाल गंगाधर तिलक, जिनकी जड़ें महाराष्ट्र में थी, इस चरण के स्वतंत्रता संघर्ष के संभवतः सर्वाधिक उग्रवादी नेता थे। तिलक के राजनीतिक दर्शन की दो महत्वपूर्ण विशेषताएं उन्हें उदारवादी विचारकों से भिन्न करती है। प्रथम, उदारवादियों जो भारत में क्रमिक रुप से प्रजातांत्रिक संस्थाओं को प्रारम्भ करने के पक्ष में थे, से भिन्न तिलक ने तुरन्त स्वराज या स्वशासन पर जोर दिया। यह कहा जा सकता है कि भारतीय सभ्यता व संस्कृति पर आधारित भाषा में रचे अभियान के कारण, उदारवादियों के विपरित तिलक का प्रभाव व्यापक था क्योंकि उदारवादियों ने जो मार्ग अपनाया, वह सर्वथा अपरिचित था। अतः तिलक तीक्ष्ण राजनीतिक समझ रखने वाले राष्ट्रीय नेता ही नहीं थे, अपितु उन्होंने राष्ट्रीय आन्दोलन की एक नई लहर प्रारंभ की। इस प्रकार तिलक अतुलनीय है तथा उनके स्वदेशी, बहिष्कार तथा हड़ताल का गांधी पर महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ा गांधी ने विशिष्ट उग्रवादी पद्दतियों को पूर्णरुपेण परिवर्तित कर सामाजिक आर्थिक व राजनीतिक संदर्भ में परिष्कृत व व्यवस्थित किया, उस समय जब राष्ट्रवादी संघर्ष ने अपने प्रभाव को जिले के कस्बे तक ही नहीं अपितु गांवों तक पहुंचा दिया, वे गांव जो गांधी के पहले स्वतंत्रता संघर्ष में उपेक्षित रहे।[9]

मेकियावेली के अर्थो में गांधीजी राजनीतिज्ञ नहीं थे। धर्म राजनीतिज्ञों के लिए विदेशी वस्तु है और पदार्थवादी मूल्यों का पोषण करने वाले राजनीतिज्ञ आर्थिक दृष्टि से अविकसित लोगों पर आधिपत्य तथा नियंत्रण रखने के विचारों से ओतप्रोत थे। गांधीजी ने राजनीति को आध्यात्मिक रुप दिया, उनके राजनीतिक गुरु उदारवादी गोखले भी राजनीति का आध्यात्मीकरण करना चाहते थे। गांधी धर्म को राजनीति से पृथक नहीं किया। उनके विचारों में, ''धर्महीन राजनीति मृत्यु का ऐसा पिंजरा है जो आत्मा की हत्या कर देता है।'' किन्तु राजनीति में धार्मिक हठधर्मी और कट्टरपन का सवामेश हो। इसका अर्थ यह भी नहीं था कि धर्म का राजनीतिक शोषण किया जाय। उदाहरणार्थ उन्होंने खिलाफत आन्दोलन को 1920–22 में अपना समर्थन मानवीय आधार पर दिया न कि सौदेबाजी की भावना से।

महात्मा गांधी ने सत्याग्रह शब्द का प्रयोग अपने अहिंसक विरोध के दर्शन की व्याख्या के लिए किया। सत्याग्रह की धारणा विकसित करने में गांधीजी हिन्दू उपनिषद के अहिंसा की अवधारणा तथा जैन धर्म के सिद्दान्तों से प्रभावित थे। साथ ही उन्होंने अहिंसक विरोध का अनुकरण करने वाले अन्य लोग जैसे

जीसस क्राईस्ट, लियो टालस्टॉय, जॉन रस्किन, हेनरी डेविड थोरो (सविनय अवज्ञा) आदि के विचारों से भी प्रभावित थे। भारत में पहला सत्याग्रह महात्मा गांधी के द्वारा स्वतंत्रता संघर्ष के दौरान किया गया था। सर्वप्रथम बिहार के चम्पारण और गुजरात के खेड़ा जिले में क्रमशः 1917 और 1918 में इसकी शुरुआत हुई। 1920 का असहयोग आन्दोलन पहला राष्ट्रव्यापि सत्याग्रह था जिसमें विदेशी शासन का विरोध तथा एक वर्ष के भीतर स्वराज्य का लक्ष्य निर्धारित किया गया था। 1930 में राष्ट्रव्यापी नमक सत्याग्रह दांडी यात्रा मार्च से शुरु हुआ। उसके बाद 1940 का व्यक्तिगत सत्याग्रह तथा 1942 का भारत छोड़ो आनदोलन गांधीजी के सत्याग्रह का दर्शन व्यक्तिगत और सामाजिक संघर्ष दोनों के लिए समान है। यह एक साथ दो उद्देश्यों की पूर्ति करता है– पहला चरित्र निर्माण और दूसरा राष्ट्र निर्माण। इसका अर्थ है रचनात्मक कार्य और सविनय अवज्ञा के विवेकपूर्ण सामंजस्य द्वारा समाज में अच्छाईयों को प्रोत्साहित कर 'स्वराज' प्राप्ति की ओर बढ़ाया गया कदम। गांधीजी ने कहा कि ''रचनात्मक कार्यों के बिना सत्याग्रह उसी तरह है जैसे क्रिया के बिना एक वाक्य।''[10]

साधन (Means) का साध्य (Ends) से सम्बद्द करना, राजनीतिक सिद्दान्त को महात्मा गांधी की महान देन है। हॉरेस के अनुसार, ''पूर्ण विश्व के लिए गांधीजी अपनी सन्तति के लिए भविष्यद्रष्टा के स्वर का प्रतिनिधित्व करते हैं। वह इस शती के मसीहा हैं जो निरंतर बल देते रहे साधनों की शुद्दता पर प्रत्येक अन्याय का प्रतिकार करने तथा प्रत्येक बुराई को सुधारने के लिए।'' गांधीजी से पूर्व प्लेटो ग्रीन ने भी राजनीति तथा नीतिशास्त्र में सबंध स्थापित किया था। गांधीजी साधनों की नैतिक स्वस्थता पर इतने दृढ़ थे कि वह देश की स्वतन्त्रता भी स्वीकार करने को तैयार न थे, यदि वह हिंसा तथा छल के परिणाम स्वरुप प्राप्त हुई हो। अच्छे साधनों का अच्छे साध्यों से संबंध दर्शाकर गांधीजी ने राजनीति में क्रांति प्रस्तुत की थी।[11]

उन्होंने स्वाधीनता–प्राप्ति के लिए हिंसा के प्रयोग का त्याग किया क्योंकि स्वराज्य का सौन्दर्य तथा उपयोगिता दोनों ही नष्ट हो जाते, यदि वह रक्तपात से प्राप्त होता। वास्तव में आज के नैतिक पतन और चरित्रिक संकट का वास्तविक कारण है आज के सतालोलुप राजनीतिज्ञों द्वारा व्यक्तिगत साध्यों की प्राप्ति के लिए अपनाये जाने वाले भ्रष्ट और कलह को प्रोत्साहन देने वाले साधन। उनके सपनों का अहिंसक समाज राज्यहीन होगा। गांधीजी के राज्यहीन तथा वर्गहीन समाज में अनेक आत्म नियंत्रक ग्रामीण बिरादरियाँ होंगी। एक गाँव स्वैच्छिक रुप में एक संघ होगा। इस प्रकार निर्मित संघ में कोई सेना और पुलिस नहीं होगी। बड़े नगर नहीं होंगे, न्यायालय, जेलें तथा बड़े उद्योग भी नहीं होंगे। सत्ता का कोई केन्द्रीकरण नहीं होगा। जीवन सादा और सभ्यता देहाती होगी। स्वेच्छापूर्वक सहयोग तथा विकेन्द्रीकरण गांधीजी के अहिंसा समाज की विशेषताएँ होंगी। इस प्रकार जब ग्राम सब प्रकार से आत्मनिर्भर तथा स्वायतशासी होंगे, तब वास्तविक स्वराज होगा। मेरे सपनों का स्वराज दरिद्रनारायण का स्वराज है।[12] गांधीजी स्वाधीन भारत में ऐसा शासनतंत्र देखना चाहते थे जो नवजीवन और नई शक्ति प्राप्त ग्राम–पंचायतों की नींव पर आधारित हो। उनकी कल्पना के अनुसार इन पंचायतों का संगठन केन्द्रीय सरकार या राज्यों की सरकारों द्वारा नहीं होना था। उनके अनुसार तो राज्यों की सरकार और केन्द्रीय सरकार को ग्राम्य इकाइयों पर आधारित रहना था, न कि इससे उल्टा। गांधी के दृष्टिकोण का अनुकरण विनोबा एवं जय प्रकाश द्वारा किया गया।

महात्मा गांधी ने बहुत पहले मानव समाज के वर्तमान प्रारुप का पूर्वानुमान कर लिया था अतएव वे मानव सभ्यता के विकास के लिए उसे सात सामाजिक दोषों को 1925 में यंग इंडिया के अंक में इस प्रकार दर्शाया है–

1. सिद्दान्तहीन राजनीति
2. विवेकहीन सुख
3. श्रमहीन सम्पति
4. चरित्रहीन ज्ञान

5. नीतिहीन व्यापर
6. दयाहीन विज्ञान
7. त्यागहीन पूजा

अब अगर हम इन सात बातों पर ध्यान दें तो हमें स्पष्ट लगेगा कि पिछले 65 वर्षों में हम इन सात महापातकों का जो गलत आचरण हुआ उसका परिणाम देश के समक्ष है। आज समस्त विश्व में नैतिक मूल्यों का विखरना चिंता का मूल विषय है, जिसे जय प्रकाश नारायण ने प्रारंभ में ही भाँप लिया था अतएव वे दलविहीन लोकतंत्र के पक्षघर रहे परन्तु दल के संबंध में उनका कहना था कि राजनीतिक दलों की स्पष्ट त्रुटि यह है कि वे लोकतंत्र को, लोगों द्वारा सरकार के ही असम्भव बना देते हैं। लोकतंत्र उस समय लोगों की सरकार नहीं रहता, जब राजनीतिक दल जनता तथा सरकार के बीच में आ जाते हैं। इसलिए उनका सरकार के बीच में सीधा संपर्क स्थापित नहीं हो पाता। उम्मीदवार–जो कि बनने वाले प्रतिनिधि होते हैं, उनका चुनाव राजनीतिक दल करते हैं, लोगों द्वारा उनका चुनाव नहीं होता। प्रतिनिधि चुनाव जीतने के पश्चात राजनीतिक दलों में अपनी श्रध्दा बनाए रखते हैं और लोगों के प्रति उनकी कोई श्रध्दा नहीं होती। अतः प्रतिनिधि लोगों का प्रतिनिधि नहीं रहता, चाहे वह ऐसा दावा अवश्य ही करता है। उनके शब्दों में, ''दलीय प्रणाली लोगों को पिछलग्गू बना देती है जिसकी प्रभुसत्ता का केवल एक ही काम, समय–समय पर मुखियों का चुनाव करना होता है, जो उनके कल्याण का ध्यान रख सकें।[13]

दूसरे, दल शक्ति की नीतियों को प्रोत्साहन देते है और चुनाव के दिनों में अनुचित तथा निर्लज्ज ढंगों का प्रयोग करते हैं। अतः वे राजनीति को भ्रष्ट कर देते है और लोकतंत्र को स्वार्थी राजनीतिज्ञों की सरकार का रुप दे देते हैं, जो कि वोट बटोरने की कला से भली–भाँति परिचित होते हैं। इन्होंने लोकतंत्र को 'गुण्ड़ों के लिए अंतिम आश्रम (Last Ratuge of Scoundrels) में परिवर्तित कर दिया है। तीसरे, राजनीतिक दलों ने ही पड़ोसियों में घृणा फैलाने का कार्य किया है। इन्होंने एकता लाने की अपेक्षा घृणा का बीज बोया है। अतः उनका सुझाव है कि भारत अपने प्रजातांत्रिक तंत्र में सुधार कर एक ऐसे प्रजातंत्र को विकसित करे जिसमें जनता का सहयोजन प्राप्त किया जाए तथा इसमें समाविष्ट हो, ऐसा दलहीन प्रजातंत्र में अधिकारों के विकेन्द्रीकरण से ही संभव है। अतः जय प्रकाश ने ग्राम सभा के गठन की राय दी है जो कि राजनीतिक दल–प्रणाली से मुक्त होगी, क्योंकि प्रत्येक वयस्क इस प्रकार की सभा का अपने आप सदस्य बन जाएगा। राजनीतिक दलों के प्रभाव को कम करने के लिए उन्होंने ग्राम–पंचायत के सदस्यों के चुनाव के सर्वसम्मति के आधार पर चुनने की राय दी। राजनीतिक दलों के अस्वस्थ प्रभाव से बचने के लिए राज्य विधान मण्डलों तथा लोकसभा के चुनाओं के लिए भी निर्वाचिक–मण्डल की विधि को पयुक्त करने की राय दी है। जय प्रकाश ने न केवल प्रजातंत्र को सुधारने के ही उपाय सुझाए, वरण देश के अनेकों दरिद्र और कष्ट में पड़े लोगों को कतिपय महत्वपूर्ण सामाजिक और आर्थिक अधिकार दिलाने के लिए सुझाव दिए। उन्होंने कहा था कि सार्वजनिक जीवन को भ्रष्टाचार रुपी केंसर के रोग से मुक्त कर उसे स्वच्छ किया जाए।

लोकमान्य से लोकनायक की उत्तराधिकारी एवं अनुयायी परंपरा में तिलक के बाद गांधी तथा गांधी के बाद विनोबा तथा विनोबा के बाद जय प्रकाश का स्थान माना जा सकता है यानी लोकमान्य से लोकनायक तक की यात्रा में बाल गंगाधर तिलक जनशक्ति का, लोकशक्ति का आह्वान किया, राजशक्ति के मुकाबले में लोकशक्ति को खड़ा करने की चेष्टा की। हमारे देश के प्रथम लोकमान्य। तिलक चुनाव में तो खड़े हुए थे, लेकिन लोकमान्य बनने से पहले। लोकमान्य जब बने तो फिर कभी वे चुनाव के लिए खड़े नहीं हुए। दूसरी ओर लोकनायक जय प्रकाश कभी जन प्रतिनिधि नहीं बने। दादा धर्माधिकारी का कहना है कि लोकनायक जय प्रकाश विनोबा की क्रांति से अविमूर्त हुए इसलिए इस देश में एक अभूतपूर्ण लोक–जागरण जय प्रकाश उस वक्त उपस्थित कर सके, जिस वक्त हम समझते थे कि देश मृतक की स्थिति में है, अब वह कभी नहीं जागेगा, इस देश की नाड़ियों में अब कोई शक्ति

नहीं रह गई है। जय प्रकाश जैसे लोगों को देश की नाड़ी का ज्ञान होता है, जो साधारण मनुष्य को नहीं होता।

आचार्य राममूर्ति के विचारानुसार जे. पी. का सम्बन्ध तीन आन्दोलनों से जो अपने समय में राष्ट्र की मुख्य धारा से हटकर हुए हैं। पहला, 1936 से 47 तक का कांग्रेस समाजवादी पार्टी का आन्दोलन, जो गांधी की अहिंसक धारा से अलग था, लेकिन कांग्रेस में आजादी की लड़ाई का भरपूर अंग था। जे. पी. उनमें प्रमुख थे। दूसरा, स्वतंत्रता के बाद 1951 में शुरु होने वाला भूदान–यज्ञ– आन्दोलन, जिसमें जे. पी. 1953 में शामिल हुए। उसके नेता तो विनोबा थे लेकिन दूसरा नम्बर जे. पी. का ही था। उस वक्त देश की जनता नेहरु और उनकी सरकार के साथ थी। तीसरा और अंतिम आन्दोलन 1947–75 का था बिहार आन्दोलन जिसके नायक स्वयं जे. पी. थे। यह आखिरी लड़ाई और सबसे अच्छी लड़ाई (लास्ट एण्ड बेस्ट फाइट) थी, जो जे. पी. की सबसे अच्छी लड़ाई थी और सबसे छोटी लड़ाई थी मात्र 461 दिनों की।

5 जून 1974 को पटना की विशाल सभा को सम्बोधित करते हुए जय प्रकाश नारायण ने पहली सम्पूर्ण क्रांति शब्द का प्रयोग किया था। अतः सम्पूर्ण क्रांति का अर्थ है सामाजिक, नैतिक, आर्थिक सभी क्षेत्रों में और जीवन के हर पहलू में क्रांति हो ताकि जनता सचमुच स्वराज्य का उपयोग कर सके। जय प्रकाश के अनुसार ऐसी सम्पूर्ण क्रांति स्वयं जनता ही कर सकती है और उसे ही यह करना है। जय प्रकाश नारायण के विचार में सम्पूर्ण क्रांति सात क्रान्तियों का संयोग या मेल है– सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, वैचारिक (बुद्दिवादी) और आध्यात्मिक (नैतिक) क्रांतियाँ। मानव इतिहास में विभिन्न क्रांतियाँ अपने मूल उद्देश्य को प्राप्त करने में असफल रही है। यद्यपि इन्हीं क्रांतियों के संदर्भ में सम्पूर्ण क्रांति की धारणा का विकास हुआ है, एक समूह से दूसरे समूह को सत्ता हस्तान्तरण क्रांति नहीं है। बल्कि सम्पूर्ण जनता को सत्ता का हस्तान्तरण सम्पूर्ण क्रांति है। एक बात जे. पी. ने प्रारंभ में ही स्पष्ट कर दी थी कि 'सम्पूर्ण क्रांति' हिंसा के द्वारा नहीं हो सकती और दूसरी बात यह कि वह सत्ता और कानून के माध्यम से भी नहीं हो सकती। गांधी ने यहाँ तक कहा था कि ''हिंसा से मिलता तो स्वराज्य तो मुझे स्वराज्य भी नहीं चाहिए।'' गांधी की तरह ही जे. पी. भी कहते हैं कि ''जो समाज बदलना चाहते हैं, उन्हें खुद को बदलना होगा।'' गांधी की तरह जे. पी. ने भी अपना सम्पूर्ण जीवन राष्ट्र को अर्पित कर दिया। दिया सब कुछ, मांगा कुछ नहीं। जे पी. भगवान शंकर की भांति समाज की विषम परिस्थितियों का जहर पीते रहे और समाज और समस्त मानवता को अमृत बांटते हुए अमन शांति के लिए लगे रहे। लोकमान्य से लोकनायक लोकार्थ हेतु लोकशक्ति लोक चेतना का जागरण करते रहे। यथा

कहते हैं उसको 'जय प्रकाश' जो नहीं मरण से डरता है,
ज्वाला को बुझते देख कुंड में, स्वयं कूद जो पड़ता है।

संदर्भ

1. भगवान, विष्णु, भारतीय राजनीति विचारक, आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली, 2000, पृ. 32
2. केसरी, 19 सितम्बर, 1905
3. मराठा, 13 दिसम्बर, 1919
4. केसरी, 21 जनवरी, 1904
5. भगवान, विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 34
6. गोपाल, राम लोकमान्य तिलक, 1956, पृ. 235
7. भगवान, विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 40
8. Lectur delivered at Caleutta in 1907

9. चक्रवर्ती, विद्युत, पाण्डेय, राजेन्द्र कुमार, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, रावत पब्लिकेशन्स, नई दिल्ली, 2012, पृ. 53–54
10. कुमार, आनंद (सं.), सत्याग्रह शताब्दी अन्तरराष्ट्रीय समागम, सेंटर फार सोसल रिसर्च, नई दिल्ल, पृ.4
11. भगवान, विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 78–79
12. Bose Nermal Kumar, Nermal (Ed.) Selections from Gandhi, 1948, P. 111
13. भगवान, विष्णु, पूर्वोक्त, पृ. 268
14. नारायण, जय प्रकाश, मेरी विचार यात्रा, भाग–2, सर्व सेवा संघ, वाराणसी, पृ. 121

❑❑❑